प्रत्याख्यानः– ''स्थानीय भाषा में अनुवादित न्यायनिर्णय मात्र पक्षकारों को उनकी भाषा में समझने पर्यन्त ही सीमित है एवं किसी अन्य उद्देश्य हेतु उपयोगार्थ नहीं है। सभी व्यावहारिक एवं कार्यालयीन उद्देश्यों हेतु, न्यायनिर्णय के **आंग्लभाषा संस्करण** को ही प्रामाणिक माना जावेगा तथा निष्पादन एवं क्रियान्वयन हेतु प्रभावी माना जावेगा ।''

रिपोर्टेबल

भारत के सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष

आपराधिक अपीलेटेड क्षेत्राधिकार

क्रिमीनल अपील क्रं. 485 / 2019
(एस.एल.पी. (आपराधिक) क्र. 10129 / 2018 से उत्पन्न)

मध्यप्रदेश राज्य — अपिलार्थी

विरूद्ध

दीपक — प्रतिवादी

निर्णय

न्यायाधिपति डॉ. धनन्जय वाय. चन्द्रचुड,

1. लिव ग्रान्टेड

2. वर्तमान अपील माननीय म0 प्र0 उच्च न्यायालय की एकल खण्डपीठ के निर्णय1 दिनांक 31 / 01 / 2018 से उत्पन्न है, जिसके द्वारा विशेष न्यायाधीश द्वारा लगाए गए आरोप से प्रतिवादी को उन्मुक्त किया गया था। विशेष प्रकरण क्र. 51 / 2017 में पारित आदेश दिनांक 13.10.2017 द्वारा विशेष न्यायाधीश, नीमच ने प्रतिवादी के विरूद्ध भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा 360 और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा (3)(V) के तहत आरोप विरचीत किए थे।

3. इस अदालत द्वारा जारी किए गए नोटिस दिनांक 19 नवम्बर, 2018 के अनुसरण में विद्वान अधिवक्ता के माध्यम से प्रतिवादी ने अपनी उपस्थिति दर्ज की है। हमने म0प्र0 राज्य की तरफ से उप अधिवक्ता को तथा प्रतिवादी की तरफ से विद्वान अधिवक्ता के तर्कों को सुना है।

4. 9 अगस्त, 2017 को ज्योति शर्मा ने नीमच में अपने निवास स्थान पर जहर खाकर आत्महत्या कर ली थी। जहर खाने के तत्काल बाद उसे ईलाज के लिए जिला अस्पताल ले जाया गया था। पीड़िता के मृत्युकालीन कथन को नायब तहसीलदार, नीमच की उपस्थिति में

दिनांक 09 अगस्त, 2017 को दर्ज/अभिलिखित किया गया। मृत्यु कालीन कथन का प्रासंगिक भाग निम्नानुसार है –

> '' प्रश्नः आपको क्या हुआ है?
> उत्तरः मैंने जहर खा लिया है।
> प्रश्नः आपने जहर क्यूं खाया है?
> उत्तरः मैं नौकरी पाने में सक्षम नहीं हूं, मैं जहां भी जाती हूं, दीपक भामावत निवासी जीरन द्वारा मुझे नौकरी से निकलवा दिया जाता है। पूर्व में भी उसने मेरे साथ छेड़छाड़ की थी जिस पर मेरे द्वारा उसके खिलाफ मामला दर्ज किया गया था, तभी से वह मुझे परेशान कर रहा है।
> प्रश्नः क्या आप कुछ ओर कहना चाहती हैं?
> उत्तरः नहीं। ''

5. दिनांक 10 अगस्त, 2017 को ज्योति शर्मा की मृत्यु उदयपुर के उसी अस्पताल में हो गई जहां उसे उपचार के लिए भर्ती कराया गया था। प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 16 अगस्त, 2017 को दर्ज की गई थी। अनुसंधान के दौरान प्रतिवादी को 6 सितम्बर, 2017 को गिरफ्तार कर लिया गया था। अनुसंधानकर्ता अधिकारी द्वारा अनुसंधान के पूर्ण होने पर, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 360 और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(2)(v) एवं 3(2)(v)(a) के तहत दिनांक 22 सितम्बर, 2017 को चार्जशीट/आरोप पत्र तैयार कर विशेष न्यायाधीश, नीमच के समक्ष प्रस्तुत किया गया, जिस पर 13 अक्टूबर, 2017 को संज्ञान लिया गया था। दिनांक 10 जनवरी, 2018 को आरोप विचरीत किए गए। आरोपों को विरचीत करने वाले आदेश को चुनोती देते हुए माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष एक आपराधिक रीविजन (आपराधिक पुनरीक्षण याचिका) दायर की गई।

6. विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस कार्यवाही के व्यथीत आदेश द्वारा अधीनस्थ न्यायालय के निर्णय को अपास्त करते हुए प्रतिवादी को मुक्त करने के आदेश दिए थे।

7. उप अधिवक्ता जनरल (डिप्टी एडवहोकेट जनरल) ने अनुसंधान समाप्त होने के बाद तैयार किए गए आरोप पत्रों पर ध्यान आकर्षित किया। विद्वान अधिवक्ता ने बताया कि पीड़िता द्वारा दिया गया मृत्युकालीन कथन दिनांक 09 अगस्त, 2017 को अभिलिखीत किया गया था। यह आग्रह किया गया कि अनुसंधान में खुलासा हुआ है कि प्रतिवादी और मृतका दोनों ही सेन्ट्रल बैंक के कर्मचारी थे। प्रतिवादी ने मृतका के नाम पर कथित रूप से जाली हस्ताक्षर करने के बाद

बैंक से ऋण प्राप्त किया तथा उस ऋण का भुगतान नहीं किया जिसके परिणामस्वरूप केन्द्रीय बैंक ने मृतका को ऋण चुकाने हेतु नोटिस दिनांक 03 अगस्त, 2017 जारी किया। अनुसंधान के दौरान अनुसंधानकर्ता एजेन्सी ने पाया कि दिनांक 01.11.2016 को थाना प्रभारी, जीरन पुलिस थाना; दिसम्बर 2016 में पुलिस थाना जीरन एवं एक अन्य शिकायत दिनांक 06.01.2017 को जिलाधीश, नीमच के समक्ष प्रतिवादी द्वारा परेशान किए जाने का स्पष्ट उल्लेख करते हुए उक्त तीनों शिकायतें पीड़िता द्वारा दर्ज करवाई गई थी। प्रतिवादी पर आरोप है कि उसने मृतका को नौकरी से निकलवा दिया और कथित तौर पर मृतका के मकान मालिक से कहकर उसे किराये के मकान से भी निकलवा दिया। इस तरह से अनुसंधान के दौरान उजागर हुए तथ्यों के आधार पर यह प्रार्थना की गई कि उक्त प्रकरण उन्मोचन हेतु नहीं बनता है।

8. दूसरी तरफ प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत विद्वान अधिवक्ता ने इस तथ्य पर रोशनी डाली की प्रथम सूचना रिपोर्ट के सभी तथ्य केवल इस बात पर जोर देते है कि प्रतिवादी ने मृतका को केन्द्रीय बैंक की नौकरी से निकलवाकर उसे परेशान किया था और इस प्रकार अनुसूचित जाति की एक महिला को ऋण की किस्तें जमा करने के लिए प्रताड़ित किया। विद्वान अधीवक्ता के अनुसार प्रथम सूचना रिपोर्ट के तथ्यों के आधार पर माननीय उच्च न्यायालय न्यायसंगत रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि प्रस्तुत प्रकरण में किसी भी प्रकार का बहकावा, उकसावा, प्रलोभन या भड़काना प्रतीत नहीं होता है अतः भारतीय दण्ड विधान की धारा 306 के अंतर्गत दुष्प्रेरण के अंतर्गत कोई भी आरोप नहीं बनता है।

9. एकमात्र परिस्थिति जो उच्च न्यायालय द्वारा पारित व्यथित निर्णय को मजबूती प्रदान करती है, निम्नानुसार है –

> ''11... केवल यह तथ्य की मृतका किसी भी नौकरी को प्राप्त करने में असफल रही थी और उसकी ऐसी धारणा थी कि वादी के कारण ही उसे कोई नई नौकरी नहीं मिल रही है। उसने (वादी ने) कभी यह इरादा नहीं किया था कि मृतक द्वारा आत्महत्या की जावे।''

उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित किया गया कि इस प्रकार –

> ''16... वर्तमान प्रकरण के तथ्य एवं परिस्थितियों के अनुसार इस बात के कोई भी साक्ष्य नहीं मिले हैं कि मृतका को आत्महत्या करने हेतु किसी भी प्रकार का बहकावा, उकसावा, प्रलोभन दिया गया हो ।''

10. अब हम जांच करेंगे कि क्या विशेष न्यायाधीश, नीमच द्वारा आरोपित आरोपों से प्रतिवादी को उन्मुक्त करने हेतु उच्च न्यायालय ने भारतीय दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 397 सहपठित धारा 401 के तहत अपने पुर्नरिक्षण क्षेत्राधिकार का सही उपयोग किया है या नहीं।

11. अमित कपुर विरूद्ध रमेशचन्द्र [(2012) 9 SCC 460)] के प्रकरण में इस न्यायालय की माननीय खण्डपीठ द्वारा पुर्नरिक्षण अधिकार पर प्रकाश डाला है। न्यायमूर्ति स्वतंत्र कुमार ने इस प्रकार उल्लेख किया है –

> ''12... संहिता की धारा 397 उच्च न्यायालय में यह शक्ति निहित करती है कि वो किसी अवर दण्ड न्यायालय के समक्ष कि किसी कार्यवाही के अभिलेख को, किसी अभिलिखित या पारित किये गये निष्कर्ष, दण्डादेश या आदेश कि शुद्वता, वैधता या नियमितता (औचित्य) के बारे में अपना समाधान करने के प्रयोजन से मंगा सकता है और उसकी परिक्षा/जॉच कर सकता है। इस प्रावधान का उद्देश्य प्रत्यक्ष त्रुटि को दूर करना है, न्यायालय द्वारा उन आदेशों की जांच करना उचित नहीं हो सकता है जो कि सावधानीपूर्वक विचार पश्चात् तथा विधि के अनुसार पारित होना प्रतीत होते हैं।
>
> यदि हम इस न्यायालय द्वारा पारित विभिन्न निर्णयों पर गौर करते है तो यह उभर कर आता है कि पुर्नरिक्षण संबंधित क्षेत्राधिकार तो वहां भी लागू होता हैं जहां व्यथित निर्णय में गंभीर त्रुटि हो या कानून के प्रावधानों का अनुपालन नहीं हो, या फिर बिना किसी सबूत के निर्णय/निष्कर्ष पर पहुंचा गया हो या फिर भौतिक साक्ष्य को नजरअंदाज कर दिया हो या न्यायिक विवेक का प्रयोग बहुत ही मनमाने ढंग से (adversely or pervesely) उपयोग किया गया हो। यह सम्पूर्ण वर्ग नहीं है, बल्कि केवल संकेत मात्र है क्योंकि प्रत्येक मामलें को निर्धारण करने के अपने अलग मापदण्ड या आधार है।''
>
> ''13... एक और अच्छी तरह से स्वीकृत मानदण्ड यह है कि उच्च न्यायालय का पुर्नरिक्षण क्षेत्राधिकार का दायरा बहुत सीमित है और इसे नियमित रूप से प्रयोग नहीं किया जा

सकता है। एक मान्य प्रतिबंध यह भी है कि पुर्नरिक्षण की शक्ति का प्रयोग किसी भी अंतरिम या अंतवर्ती (इन्टरलोकेटरी) आदेश के खिलाफ नहीं होना चाहिए। न्यायालय को इस बात का ध्यान रखना होगा कि पुर्नरीक्षण संबंधित क्षेत्राधिकार का प्रयोग स्वयं में अन्याय के समान नहीं होना चाहिए। जहां न्यायालय इस सवाल से डील कर रही है कि किसी दिए गए प्रकरण में चार्ज सही तरीके से और विधि अनुसार तय किया गया है तब वह अपने पुर्नरीक्षण क्षेत्राधिकार के अभ्यास में हस्तक्षेप करने के लिए अनइच्छुक हो सकता है जब तक की मामला काफी हद तक उपरोक्त वर्णित श्रेणियों में न आता हो। आपराधिक प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आरोपों का निर्धारण एक अत्यन्त उन्नत चरण है।''

न्यायालय ने उन सिद्धांतों का एक समूह भी निर्धारित किया है जिन्हें उच्च न्यायालय को अपने अधिकार का उपयोग करते समय ध्यान में रखना चाहिए :

''27... इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के सर्वोत्तम एवं निष्पक्ष विश्लेषण करने पर हम ऐसे कुछ सिद्वान्तों को चुनने में सक्षम है जिन्हें क्षेत्राधिकार प्रयोग हेतु उचित माना जाता है। विशेषतः आरोप खारिज करने के संबंध में संहिता की धारा 397 या धारा 482 या दोनों के अनुसरण में क्षैत्राधिकार संबंधित अधिकार को प्रयोग करना।''

''27.2.. न्यायालय को समाधान यह करना चाहिए कि क्या मामले के रिकार्ड, प्रस्तुत दस्तावेज के अवलोकन से प्रथन दृष्टया अपराध स्थापित करते है या नही। यदि आरोप इतने बेबाक और स्वभाविक रूप से अनुचित है कि कोई भी विवेक पूर्ण व्यक्ति कभी भी इस तरह के निर्ष्कष पर नही पहॅूच सकता है और जहॉ एक आपराधिक कृत्य के मूल तत्व ही दृष्टिगत नही है तब न्यायालय हस्तक्षेप कर सकती है।''

''27.3.. उच्च न्यायालय को अनुचित रूप से हस्तक्षेप नही करना चाहिए। सबूतों की जॉच

गुणदोष पर आधारित इस बाबत् नही करना चाहिए की प्रकरण की समाप्ति किस स्तर पर होगी– दोषसिद्वी पर या चार्ज/आरोप की

विरचना करते समय या आरोपों को खारिज करते समय।''

''27.4.. अधिनस्त न्यायालय द्वारा कारित न्याय के मूलभूत त्रुटि (पेटेंट मिसकैरेज ऑफ जस्टिस) को रोकने के लिए और गंभीर त्रुटि को सुधारने के लिए इस प्रकार के अधिकार का प्रयोग अत्यधिक जरूरी हो जाता है। ऐसे मामलों में भी को अपने अर्तनिहित अधिकार के प्रयोग से अभियोजन को विफल करने से शुरूवाति तौर पर उच्च न्यायालय को हस्तक्षेप करने से विमुख रहना चाहिए।''

''27.9.. न्यायालय को एक अन्य बात का भी विशेष ध्यान रखना चाहिए कि वे मामले में दोष सिद्व करने हेतु पर्याप्त सामग्री है या नही यह निर्धारित करने के लिए तथ्यों सबूतों एवं रिकार्ड मटेरियल्स की जॉच नही कर सकते है। न्यायालय का संबंध मुख्य रूप से उन आरोपों से होना चाहिए कि क्या वे पूर्णरूप से अपराध का गठन करते है और यदि ऐसा है तो क्या यह न्यायालयिन प्रकिया का दुरूपयोग करते हुए अन्याय कारित करता है।''

''27.13.. **आरोप का रद्द किया जाना, निरंतर अभियोजन के नियम का अपवाद है–** जहां अपराध व्यापक रूप से संतुष्ट है, न्यायालय को आरंभिक अवस्था में, अभियोजन को रद्द करने की अपेक्षा निरंतर अभियोजन की अनुमति देने हेतु अधिक प्रवृत्त होना चाहिए। एक न्यायालय से, दस्तावेजों अथवा अभिलेखों की स्वीकार्यता अथवा विश्वसनीयता तय करने के उद्देश्य से अभिलेखों को व्यवस्थित रखने की नहीं अपितु प्रथम दृष्ट्या गठित मत से की अपेक्षा होती है।'' (जोर दिया गया)

12. राजस्थान राज्य बनाम फतेहकरन मेहदू [(6(2017) 3 SCC 198)] के प्रकरण में इस न्यायालय की खण्डपीठ द्वारा निर्धारित किया गया आरोपो के निर्धारण में कि धारा 397 के तहत हस्तक्षेप स्वीकार है। माननीय न्यायाधिपति अशोक भूषण द्वारा निर्धारित किया गया –

> ''26... ''हस्तक्षेप की व्यापकता एवं द0प्र0सं0 की धारा 397 के अधीन अधिकारिता के प्रयोग को इस न्यायालय द्वारा बार बार समझाया गया है। और यह भी कि एक प्रक्रम पर द0प्र0संकी धारा 397 के अधीन हस्तक्षेप का विस्तार, जबकि आरोप विरचित हो चुका था, भी सुस्थिर है। आरोप की विरचना के स्तर पर, न्यायालय का आरोप की साक्ष्य से कोई संबंध नहीं होता बल्कि इसे सामग्री पर ध्यान केंद्रित करना होता है एवं एक राय बनानी होती है कि क्या इस बात का कोई दृढ़ संदेह है कि अभियुक्त ने कोई अपराध कारित किया है, जिस पर यदि विचारण किया जाए तो इस उसका अपराध साबित हो सके। आरोप की विरचना वह चरण नहीं है, जिस पर अपराध का अंतिम परीक्षण लागू किया जाए। इस प्रकार, आरोप विरचित करने के चरण पर यह अभिनिर्धारित करने के लिए, न्यायलय को यह राय बनानी चाहिए कि अभियुक्त निश्चित रूप से एक अपराध करने का दोषी है, कुछ ऐसा अभिनिर्धारित करना है जो कि ना तो अनुमित है ना ही द0प्र0सं0 की व्यवस्था के संगत है।''

13. इस अदालत के उपरोक्त निर्णयों के मद्देनजर अब हम यह निर्धारित करेंगे कि उच्च न्यायालय ने अपने पुनर्रीक्षण क्षेत्राधिकार का सही उपयोग किया है या नहीं। उच्च न्यायालय ने माना था कि निचली अदालत ने वर्तमान मामले में आरोप तय करने में चूक की थी क्यूंकि उसमें कहीं भी उकसावे, बहलावे या प्रोत्साहन के संबंध में कोई सबूत नहीं था जिससे कि मृतका आत्महत्या के प्रेरित हो।

14. इस न्यायालय के कुछ निर्णय को संदर्भित करना प्रसांगिकता है। चित्रेश कुमार चोपड़ा बनाम राज्य (नेशनल केपिटल क्षेत्र, दिल्ली) [(7(2009) 16 SCC 605)] में अपीलार्थी और दो अन्य व्यक्तियों को दण्ड संहिता की धारा 34 सहपठित धारा 306 के तहत आरोपित किया गया था। यह आरोप लगाया गया था कि अपीलकर्ता और अन्य आरोपी व्यक्तियों ने मृतका को कुछ जमीन की बिक्री से होने वाले मुनाफे के स्वयं के हिस्से का हिस्सा देने के लिए जबरन हस्ताक्षर

करने के लिए मजबूर किया गया था। इसके कारण विवाद हुआ और मानसिक उत्पीड़न के स्वरूप मृतक द्वारा आत्महत्या कर ली। माननीय न्यायालय द्वारा ट्रायल कोर्ट द्वारा विरचीत आरोपों की पुष्टि की। इस न्यायालय की खण्डपीठ द्वारा आत्महत्या के अपराध के इनग्रिडियन्स बताए गए। माननीय न्यायमूर्ति श्री डी. के. जैन द्वारा निर्धारित किया गया –

> ''19... जैसा कि रमेश कुमार [(2001)9 एस.सी. सी 618 : 2002 एस.सी.सी ;आपराधिक 1088] में कहा गया है, जहां अभियुक्त अपने कृत्यों से अथवा आचरण की निरंतर दिशा/प्रकिया से ऐसी परिस्थितियां निर्मित करता है कि मृतक के पास आत्महत्या करने के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नहीं बचा था, वहां ''उकसाहट'' का अनुमान लगाया जा सकता है। अन्य शब्दों में, यह प्रमाणित करने के लिए कि क्या अभियुक्त ने किसी व्यक्ति को आत्महत्या करने हेतु दुष्प्रेरित किया है, यह स्थापित करना होगा किः
>
> I) अभियुक्त द्वारा मृतका को शब्दों, कार्यों अथवा इच्छापूर्ण चूक अथवा आचरण जो कि इच्छापूर्ण मौन भी हो सकता है से, तब तक परेशान करता रहा तथा चिढ़ाता रहा जब तक कि मृतका ने प्रतिक्रिया नहीं की अथवा मृतका को सामने की दिशा में तेजी से बढ़ाने के लिए अपने कार्यों, शब्दों अथवा इच्छापूर्ण चूक अथवा आचरण से उसे धक्का दिया या मजबूर किया।
>
> II) ''कि उपरोक्त तरीके से कार्य करने के दौरान अभियुक्त का मृतका द्वारा आत्महत्या कारित करने हेतु उकसाने, आग्रह करने अथवा प्रोत्साहित करने का आशय था। निःसंदेह, दुराशय उकसाहट की आवश्यक सहवर्ती वस्तु है।''

तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद न्यायालय ने नोट किया कि प्रथम दृष्टया आत्महत्या हेतु दुषप्रेरण का अपराध बनता हैः

> ''22... वर्तमान प्रकरण में, आत्महत्या लेख जिसका सार ऊपर है को छोड़कर, विवेचना की प्रक्रिया के दौरान पुलिस द्वारा अभिलिखित किए गए बयान यह बताने को प्रवृत्त होते हैं कि जो

यहां अपीलार्थी है उसके सहित अभियुक्त के साथ व्यापारिक लेनदेन के कारण, मृतक पर कुछ ऐसा करने के लिए भारी दबाव बनाया गया था जो वह कदाचित करना नहीं चाह रहा था। प्रथम दृष्ट्या, ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलार्थी व सहअभियुक्तगणों का आचरण ऐसा था कि मृतक के पास अपने जीवन का अंत करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं बचा था एवं इसी कारण, भा.दं.सं. की धारा 107 को सबसे पहले आकर्षित किया गया था।

यह भी नोट किया गया कि आरोप तय करने के चरण में न्यायालय को यह विचार करना चाहिए कि अभियुक्त द्वारा अपराध किया गया है क्या ऐसे 'अनुमान' के लिए कोई आधार हैः

''25... यह घिसा पिटा है कि, आरोप की विरचना के चरण पर, एक न्यायालय के लिए अभिलेख की सामग्री व दस्तावेजों का, यह पता लगााने के उद्देश्य से मूल्यांकन करना आवश्यक है कि क्या उससे प्रकट होने वाले तथ्य अपने प्रत्यक्ष मूल्य पर अभिकथित अपराध या अपराधों को गठित करने वाले सभी अवयव के अस्तिव को अनावृत करते हैं । इस सीमित प्रयोजन हेतु, न्यायालय साक्ष्यों की छानबीन/छटनी कर सकता है क्योंकि इतने आरंभिक चरण में उन सभी चीजों को, जो कि अभियोजन द्वारा कही गई हैं, पूर्ण सत्य के रूप में स्वीकार करना अपेक्षित नहीं किया जा सकता । इस चरण पर, न्यायालय को साम्रगी पर मात्र यह निष्कर्ष निकालने के उद्देश्य से विचार करना चाहिये कि इस '' अवधारणा'' के लिए आधार है कि अभियुक्त ने एक अपराध कारित किया है एवं न कि इस निष्कर्ष पर पहुॅचने के लिए कि इससे दोष के सिद्ध होने की संभावना नहीं है।''

15. इस न्यायालय की माननीय खण्डपीठ द्वारा राजबीर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में [(8(2006) 4 SCC 51)] में नोट किया गया कि धारा 227 के अनुसार उच्च न्यायालय को यह पता लगाना चाहिए कि 'आरोपियों के खिलाफ कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है' या ''यह अनुमान लगाने के लिए पर्याप्त आधार है कि अपराध किया गया है। माननीय न्यायमूर्ति श्री जी.पी. माथुर द्वारा अवधारित किया गया कि –

''9... स्ट्रीट अत्याचार विरोधी परिषद वि0 दिलीप नाथुमल चोर्डिया, में न्यायालय ने धारा 227 के

विस्तार का परीक्षण करने के दौरान निम्नानुसार अवधारित कियाः– '' ...धारा 227 स्वयं में, किसी अभियुक्त को उन्मोचित करने के प्रायोजन के लिए जॉच के विस्तार के संबध में पर्याप्त दिशा निर्देश, धारित करती है। यह कहती है कि एक न्यायाधीश तब उन्मोचित करेगा जब वह मानता है कि अभियुक्त के विरूद्ध कार्यवाही करने का कोई पर्याप्त आधार नहीं है। इस संदर्भ में 'आधार' दोषसिद्धि का कोई आधार नहीं, बल्कि अभियुक्त के विचारण करने का आधार होता है अभियुक्त का दोष अथवा निर्दोषिता विचारण में निश्चित की जाएगी ना कि आरोप विरचण के समय। अतः न्यायालय के लिए सामग्री की विस्तृत जांच व उस पर विचार विमर्श करना आवश्यक नहीं है। ना ही विभिन्न पहलुओं से गहरी छानबीन करना ही आवश्यक है । जिस पर न्यायालय को विचार करना है वह यह है कि क्या अभिलेख की साक्ष्यिक सामग्री को यदि साधारणतः स्वीकार कर लिया जाता है तो क्या वह अभियुक्त को अपराध से युक्तियुक्त रूप से जोड़ेगा''

''10... उच्च न्यायालय ने संबंधित परीक्षण को बिल्कुल भी लागू नहीं किया, जैसे, कि क्या अभियुक्त के विरूद्ध कार्यवाही का पर्याप्त आधार है अथवा कि क्या इस उपधारणा का कोई आधार है कि अभियुक्त ने कोई अपराध कारित किया है। यदि उत्तर सकारात्मक है तो उन्मोचन का आदेश जारी नहीं किया जा सकता एवं अभियुक्त को विचारण का सामना करना होगा। उच्च न्यायालय ने मात्र यह देखते हुए कि '' चूंकि गोली का निशाना अन्य व्यक्ति थे एवं दुर्घटनावश मृतक पूजा वाल्मीकि उस मार्ग से गुजर रही थी और वह मारी गई'' एवं आगे यह भी देखते हुए कि '' अपीलार्थी का ना ही मृतक को मारने का आशय था और ना ही उस पर निशाना लगाया गया, इस कारण से कि वह अनुसूचित जाति थी'', उस आदेश को अपास्त कर दिया जिसके द्वारा प्रत्यर्थी कं0 2 के विरूद्ध आरोप विरचित किये गये थे। इस बात पर संदेह का कोई तरीका नहीं है कि

भा0द0सं0 की धारा 301 के प्रावधान पूर्णरूप से उपेक्षित किए गए हैं एवं विद्वान् विशेष न्यायाधीश द्वारा, आरोप की विरचना के संबंध में जारी आदेश की वैधता पर निर्णय करने हेतु सुसंगत मानदण्ड लागू नहीं किए गए। अतः आक्षेपित आदेश, स्पष्ट रूप से विधि में त्रुटिपूर्ण है एवं अपास्त किये जाने योग्य है।

16— वर्तमान प्रकरण में, ट्रायल कोर्ट के द्वारा विरचित आरोपों को मान्य करने हेतु रिकॉर्ड पर पर्याप्त आधार है। आरोपी को निरसित (डिस्चार्ज) किया जाना न्यायसंगत नहीं है। अनुसंधान के दौरान प्रकट हुए तथ्यों को उच्च न्यायालय द्वारा अनदेखा किया गया। तथ्य (मटेरियल) दर्शाते हैं कि मृतक के द्वारा कई शिकायतें दर्ज की गई थी। अंतिम शिकायत आत्महत्या के कुछ दिन पूर्व की गई थी। यह कहा गया कि प्रतिवादी द्वारा मृतक के नाम पर धोखे के द्वारा पांच लाख रूपये का लोन लिया गया था एवं मृतक और प्रतिवादी के बीच इस बात पर बहस भी हुई थी। यहां तक की कहा गया कि प्रतिवादी द्वारा मृतक को उसके किराये के मकान से निरसित कराया गया तथा उसे सेन्ट्रल बैंक की जॉब से भी टरमिनेट करवाया गया। मृत्युकालीन कथन भी उपलब्ध है।

17— हालाकि हम यह स्पष्ट करते हैं कि इस निर्णय से ट्रायल के मेरिट पर कोई असर नहीं होगा।

18— उपरोक्त कारणों से हम इस अपील को स्वीकार करते हैं और उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए व्यथित निर्णय दिनांक 31 जनवरी 2018 को अपास्त करते हैं।

….....J.

(DR. DHANANJAYA Y. CHANDRACHUD)

.....J.
(HEMANT GUPTA)

नई दिल्ली
मार्च 13, 2019

प्रत्याख्यानः— ''स्थानीय भाषा में अनुवादित न्यायनिर्णय मात्र पक्षकारों को उनकी भाषा में समझने पर्यन्त ही सीमित है एवं किसी अन्य उद्देश्य हेतु उपयोगार्थ नहीं है। सभी व्यावहारिक एवं कार्यालयीन उद्देश्यों हेतु, न्यायनिर्णय के **आंग्लभाषा संस्करण** को ही प्रामाणिक माना जावेगा तथा निष्पादन एवं क्रियान्वयन हेतु प्रभावी माना जावेगा ।''

Translated by:
Dr. Surbhi Singh
(Ju. Jud. Translator)

SS